बालक के समाजीकरण विद्यालयों की भूमिका

डॉ. संतोष कुमार सिंह
असि0 प्रोफेसर
कॉलेज ऑफ एजूकेशन, बिलासपुर,
ग्रेटर नोएडा

बच्चों को नैतिकता की शिक्षा देना समाजीकरण कहलाता है, यक कहना एकांगी होगा क्योंकि समाजीकरण की अवधारणा में अधिगम के अनेक आयाम अन्तर्विष्ठ हैं, जिसके समवेत स्परूप के माध्यम से समाजीकरण का स्वरूप बनता है। बच्चा तो वस्तुतः मिट्टी का ढेर होता है। इससे देवता या दानव बनाना अवश्यमेव समाज का दायित्व है। उसमें जो कुछ भी अच्छाई–बुराई आयातित होती है वह सब समाज के अन्य सदस्यों के संसर्ग एवं सान्निध्य से ही आती है किन्तु नैतिकता को उनमें सम्प्रेषित करने या उनके द्वारा उन्हें आत्मसात करने के पूर्व अन्य अनेक सामाजिक गुणों को सीखना अपरिहार्य है अन्यथा शिशु प्रारम्भिक विकास की अवस्था का ही संस्पर्श नहीं कर सकता।[i]इस प्रकार आशय बिल्कुल स्पष्ट है कि नैतिक गुणों की अभिवृद्धि या नैतिकता की शिक्षा में बच्चे को दीक्षित करना काफी विकसित अवस्था का द्योतक है जबकि जन्म के समय एक संगठित अस्थि पंजर के रूप में समाज में अवतरित बच्चा अपने जन्म के समय से ही समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरने लगता है और ज्यों–ज्यों वह बढ़ने लगता है त्यों–त्यों उसे परिवार के सदस्यों द्वारा विभिन्न सांसारिक वस्तुओं एवं गतिविधियों की जानकारी एवं सीख मिलने लगती है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री फिचर ने लिखा है कि समाजीकरण एक व्यक्ति तथा उसके सहयोगियों के पारस्परिक प्रभावों की प्रक्रिया है तथा वह प्रक्रिया है जिसका परिणाम सामाजिक व्यवहार की पद्धतियों की स्वीकृति तथा उनके साथ व्यवस्थापन है।[ii] फिचर की इस परिभाषा में समाज के सदस्यों के बीच होने वाले पारस्परिक आदान–प्रदान, संवाद, आचार–विचार तथा उसके प्रभावों पर केन्द्रित है। रॉस लिखते हैं कि समाजीकरण अंतक्रिया करने वाले व्यक्तियों में अहम भावना का विकास है और उसकी क्षमता में वृद्धि एवं एक साथ काम करने की तत्परता है।[iii] रॉस की इस परिभाषा में सामूहिकता की भावना की अभिवृद्धि तथा सामूहिक सहयोग पर विशेष बल दिया गया है। ग्रीन की समाजीकरण की परिभाषा बहुत ही स्पष्ट है जिसमें वे कहते हैं कि समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चा सांस्कृतिक विशेषताओं, आत्म एवं व्यक्तित्व को प्राप्त करता है।[iv] समाजीकरणकी इस परिभाषा में नवजात बच्चे का समाज से नैसर्गिक सम्बन्ध स्थापित किया गया है क्योंकि समाज ही बच्चे को क्षमता प्रदान करता है। यही उसे जिन्दा रखता है और इसीलिए बच्चा समाज से जन्म के साथ ही अनुकूलन की क्रिया से गुजरने लगता है। अतएव जब ग्रीन यह कहते हैं कि नवजात शिशु सांस्कृतिक विशेषताओं से सम्पृक्त हो जाता है तो उनका आशय यही है कि वह जन्म के साथ ही समाज के सांस्कृतिक स्वरूप के सीधे सम्पर्क में आ जाता है। यहाँ पर हमें मैकाइवर का वह कथन याद आ जाता है जिसमें वह कहते हैं कि 'व्यक्ति के आत्म का विकास समाज में रहकर

संभव हो सकता है' और उक्त परिभाषा में ग्रीन ने भी निर्दिष्ट किया है कि समाजीकरणकी ही प्रक्रिया में बच्चा आत्म एवं व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। इस दृष्टि से ग्रीन की परिभाषा यौक्तिक प्रतीत होती है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री गिलिन और गिलिन के अनुसार समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह में एक क्रियाशील सदस्य बनता है, समूह की कार्यविधि से समन्वय स्थापित करता है, इसकी परम्पराओं का ध्यान रखता है और सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करके अपने साथियों के प्रति सहिष्णुता की भावना विकसित करता है।[v] समाजीकरण की इस अवधारणा में समूह, समन्वय तथा सामाजिक परिस्थिति से अनुकूलन पर विशेष बल दिया गया है जो समीचीन लगता है क्योंकि समूह का सानिध्य ही व्यावहारिक रूप धारण करती है। यही वह अभिकरण है जो प्राणीशास्त्रीय जीव को सामाजिक प्राणी में परिवर्तित कर देती है और उसे सामाजिक प्राणी का दर्जा मिल जाता है।

वोगार्ड्स ने समाजीकरणको परिभाषित करते हुए कहा है कि 'यह वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति मानव कल्याण को दृष्टि में रखते हुए परस्पर आश्रित होकर व्यवहार करते हैं और ऐसा करने की प्रक्रिया में सामाजिक आत्म नियन्त्रण एवं सामाजिक उत्तरदायित्व और सन्तुलित व्यक्तित्व का अनुभव करते हैं।'[vi] इस परिभाषा में मानव कल्याण आत्म नियंत्रण सामाजिक उत्तरदायित्व को केन्द्र में रखा गया है। जिससे ध्वनिक होता है कि समाजशास्त्री ने यहाँ व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समाजीकरणको प्रधान साधन के रूप में अंगीकार किया है और बहुत कुछ अंशों में यह अवधारणा सार्थक भी प्रतीत होती है क्योंकि परस्पर सहयोग सामाजिक आत्मनियंत्रण, सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध, संतुलित व्यक्तित्व के लिए अपरिहार्य है। यह परिभाषा देश, काल, परिस्थिति के सापेक्ष वृहद् धरातल को स्पर्श करती हैं। अकोलकर ने कहा है कि 'समाजीकरणवह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति व्यवहारों के परम्परा से चले आ रहे प्रतिमानों को अंगीकार करता है।'[vii] इस परिभाषा में व्यक्ति के पीढ़ी दर पीढ़ी अपनाये जा रहे रीति रिवाजों और मानदण्डों पर बल दिया गया है।

अन्य समाजशास्त्रियों ने समाजीकरण को परिभाषित किया है। दृष्टतया पारसन्स ने कहा है कि 'व्यक्ति द्वारा सामाजिक मूल्यों को सीखने और उनका आत्मसातकरण करने को ही समाजीकरण कहा जाता है।'[viii] आगवर्न के अनुसार समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के आदर्श नियमों के अनुसार व्यवहार करना सीखता है।

स्पष्ट है कि सामाजिक मूल्यों, मानदण्डों तथा भूमिकाओं को सीखने की प्रक्रिया की संज्ञा ही वस्तुतः समाजीकरण है। इसके तीन पक्ष प्रोद्भाषित होते हैं – देह रचना, व्यक्ति एवं समाज। मनुष्य की देह संरचना यथा समुन्नत मस्तिष्क पतली जीभ लचीले हाथ, तेजस्वी दृष्टि उसे वह क्षमताएँ प्रदान करती हैं जिनके सहयोग से वह विभिन्न व्यवहारों को समझ एवं सीखकर उन्हें स्वयं भी व्यक्त कर सकता है। वास्तव में व्यक्ति ही समाजीकरण का मूल आधार है क्योंकि इसी के 'स्व' अथवा 'आत्म' के विकसित होने से ही समाजीकरण की प्रक्रिया क्रमशः आगे बढ़ती है और समाज ही वह विशेष क्षेत्र है जिसके अन्दर विभिन्न क्रियाएँ सम्पन्न करके व्यक्ति नियमों एवं मूल्यों को सीखता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री समाजशास्त्र से कम मनोविज्ञान से अधिक है। अतएव समाजीकरण को कभी–कभी व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया से जोड़ देना समीचीन नहीं है।[ix] वस्तुतः बाल विकास समाजीकरण से सबसे अधिक जुड़ा मुद्दा है। समाजीकरण बच्चों के पालन–पोषण से जुड़ा होता है।

परिवार के बाद विद्यालय ही समाजीकरण की प्रक्रिया को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। विद्यालयों को ही नयी पीढ़ी की शिक्षा तथा

समाजीकरण का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। विद्यालय केवल कौशल एवं तकनीकी शिक्षा ही नहीं प्रदान करते हैं बल्कि वे नयी पीढ़ी में सांस्कृतिक मूल्यों एवं विचारधाराओं का भी संचारण करते है।विद्यालयों की भी समाजीकरण में अहम् भूमिका होती है। इस दृष्टि से निम्नांकित पक्ष अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं –

विद्यालयों में शिक्षकों का वही महत्व है जो किसी भवन में नींव का होता है। किसी विद्यालय में कार्यरत शिक्षक जितना ही अधिक योग्य, कौशलयुक्त, विचारवान, सत्गुणी एवं मानवीय दृष्टिकोण वाले होंगे, वहाँ पढ़ने वाले बच्चों में वांछित गुणों के विकास की संभावना भी उतनी ही अधिक रहेगी। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में अध्यापकों का ही बच्चों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। बच्चों एवं शिक्षकों के बीच स्थापित सम्बन्धों के स्वरूप का भी उनके समाजीकरण पर काफी प्रभाव पड़ता है।बच्चे आगे चलकर किस तरह का व्यक्तित्व विकसित करेंगे, उनमें किस तरह के गुणों के विकास की संभावना अधिक रहेगी, यह विद्यालयों के पाठ्यक्रम की विषयवस्तु पर काफी निर्भर करता है। प्रायः देखा जाता है कि सार्वजनिक विद्यालयों की अपेक्षा धार्मिक संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों में पूर्वाग्रह, रूढ़धारणा, असुरक्षा तथा अन्य धर्मों के लोगों के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्तियाँ अधिक पाई जाती है। अतः विद्यालयों के पाठ्यक्रमों को मानवीय हितों को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए।

विद्यालयों में बच्चों के पठन–पाठन के साथ खेल–कूद तथा स्वस्थ मनोरंजन का अवसर भी प्रदान करना चाहिए। इससे उनमें सहयोग, प्रतिस्पर्धा एवं सहिष्णुता की भावना विकसित होगी और सामाजिक परिपक्वता बढ़ेगी। ऐसे कार्यक्रमों से बच्चों का सर्वांगीण विकास सरलता से हो सकेगा।

विद्यालय में विद्यार्थियों के प्रति अनुशासन की जो तकनीक प्रयुक्त की जाती है उसका भी उनके विकास तथा समाजीकरण पर प्रभाव पड़ता है। विद्वानों एवं शोधकर्ताओं का सुझाव है कि बच्चों को कठोर अनुशासन में नहीं रखना चाहिए। उनके प्रति मित्रवत् एवं सहानुभूति व्यवहार करना चाहिए। शिक्षकों को चाहिए कि बच्चों में वांछित गुणों को प्रोत्साहित करें। इसके लिए पुरस्कार तथा प्रशंसा लाभकारी है। इसके विपरीत दण्ड का प्रायः अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। अत्यधिक दण्डात्मक कार्यवाही करने से बच्चों में प्रतिक्रियात्मक विचार पैदा हो सकते हैं और समाजीकरण की प्रक्रिया बाधित हो सकती है।

Copyright © 2017, Dr. Santosh Kumar Singh. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

सन्दर्भ :

i सिंह, जे.पी. (2006) : समाजशास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त, पेंटिस हाल ऑव इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 82.

ii फिशर, जे.एन. (1957): सोशियोलॉजी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 22.

iii रास, ई.ए. (1901): सोशल कन्ट्रोल, मैकमिलन, न्यूयार्क.

iv ग्रीन, ए.डब्ल्यू. (1956): सोशियोलॉजीः एड एनालिसस ऑफ लाईफ इन मार्डन सोसाइटी, मैकग्राहिल,पृ. 127.

v गिलिन, जे.पी. एण्ड गिलिन, जे.एल.: कल्चरल सोशियोलॉजी, पृ. 643

vi बोर्गाडस, ई.एस.: सोशियोलॉजी, पृ. 537.

vii अकोलकर, वी.वी.: सोशल साइकोलॉजी, बाम्बे पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, पृ. 126.

viii पारसन्स, टी.: द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन, पृ. 149.

ix सिंह, जे.पी. (2006) : समाजशास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त, पेंटिस हाल ऑव इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 82–83.